

Q(1.) बाल्यकाल कि विशेषताओं का वर्णन करें। इस अवस्था में शिक्षा की व्यवस्था कैसी होनी चाहिए ?

Ans:- मानव विकास के क्रम में शैशवावस्था विकास की नींव है तो बाल्यावस्था उसकी आधारशिला है। बाल्यावस्था को 2 साल से 10 या 12 वर्ष की भागों में विभाजित है। प्रारंभिक बाल्यावस्था (2 से 6 वर्ष) तथा उत्तरबाल्यावस्था (6 से 12 वर्ष) है। बाल्यावस्था में बालक सड़ह में रहता है तथा अधिक क्रियाशील होता है।

प्रारंभिक बाल्यावस्था में बालक की टांगों में शक्ति वृद्धि होती है। इस आयु में (2 से 6 वर्ष) बालक, बालिका बोलने का प्रयास करते हैं। अधिकतर उन शब्दों का प्रयोग करते हैं जो बालक की आवश्यकता से संबंधित होता है। 4 से 6 में बालक परिवार से सीखना प्रारंभ करता है। आस-पास के बच्चों के साथ खेलता है। उसमें उदारता, सहानुभूति, नकारात्मक प्रतिरूढ़िता का विकास होता है। 2 से 6 वर्ष की अवस्था में मानसिक विकास तीव्र गति से चलता है। बालक में विचार करने, कल्पना करने, स्मरण करने, भाषा के प्रयोग करने, विभिन्न कुशलताओं को प्रकट करने और ब्रह्मण में वृद्धि होती है।

उत्तरबाल्यावस्था (6 वर्ष से 12 वर्ष) की आयु में बालक प्रतिवर्ष 2 से 3 इंच लंबाई बढ़ती है। इस उम्र में तक 32 में से 28 दाँत निकल आते हैं। इस अवस्था में कालिकाओं की लम्बाई व वजन लड़कों की अपेक्षा अधिक होता है। इस आयु में बालकों की शब्दावली में बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है। उच्चारण क्षमता बढ़ जाती है। संख्याओं का ज्ञान हो जाता है। इस अवस्था में सहानुभूति और संकेत एवं खेल की सामान्य प्रवृत्तियाँ काफी तेजी से काम करती हैं।

बाल्यावस्था में शारीरिक विकास की तरह मानसिक शक्तियों, प्रक्रियाओं में निरंतर वृद्धि और पुनर्निवेश होती है। 2 से 6 वर्ष तक बालक उचित - अनुचित, अच्छा - बुरा, सुख - दुख, दूष - पृणा आदि में अंतर कर लेता है। इस अवस्था में बालकों में समस्या हल करने की क्षमता विकसित हो जाती है। तर्क क्षमता का भी विकास होने लगता है। बुद्धि के प्रयोग से बालक सीखता है और रोज नई बातें सीखने का प्रयास करता है।

बाल्यावस्था की विशेषताएँ :- मानव जीवन की आधारशिला होने के कारण बाल्यावस्था का विकास में महत्वपूर्ण योगदान है इस अवस्था की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं -

(1) इस अवस्था का बालक माता-पिता के लिए समस्यात्मक होता है इस अवस्था में बालक अपने माता-पिता से बहुत प्रश्न करता है वह किसी भी वस्तु, प्राणी को देखकर वह क्या है? क्यों, कैसे आदि प्रश्न करता है।

(2.) इस अवस्था की समूह अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में लड़कियाँ तथा लड़के अपने-अपने समूह में रहते हैं। समूह में मिलकर कार्य करते हैं।

(3.) बालक घर, परिवार, पड़ोस, विद्यालय, समाज में हो रहे कार्यों के प्रति आकर्षित होते हैं। वह उन कार्यों को बड़ों के साथ करने का प्रयास करते हैं जैसे - छोड़ों की तैयारी, सजावट, विद्यालयके कार्यक्रमों में उत्सुकता से भाग लेना।

(4.) इस अवस्था में बच्चे खेलों की ओर अधिक आकर्षित होते हैं। वे डाइंग, चित्रण, लकड़ी, मिट्टी आदि से संबंधित कार्य करते हैं। खेलों में रुचि होती है।

(5.) इस आयु में बालक अपने से बड़ों का अनुकरण करते हैं। जैसे उनके बड़े उनके सामने व्यवहार करते हैं वे उनकी तरह करते करते हैं, बैठते हैं।

बाल्यावस्था और शिक्षा :- शिक्षा की दृष्टि से बाल्यावस्था का बड़ा महत्व है।

(1.) बालक की शिक्षा की व्यवस्था उसके अतीत और भविष्यकी दृष्टान में रखकर की जाए।

(2.) बुद्धि, तर्क तथा मानसिक विकास के लिए उचित परिस्थितियाँ दी जाए।

(3.) जीवन की वास्तविकता की आधार बनाकर शिक्षा का आयोजन किया जाए।

(4.) बच्चों में नेतृत्व गुणों का विकास करके अनुयायी बनने का प्रशिक्षण दिया जाए।

(5.) बालक की जिज्ञासा शांत करने के लिए उचित तथा वैज्ञानिक उत्तर दिए जाए।

अतः शिक्षा ऐसी हो जो बालकों के लिए जीवनी-पयोगी हो। शिक्षा व्यवस्था ऐसी ही जिले बालकों में उचित

गुणों का विकास हो सके। आलस्य में यदि विकास के विभिन्न आयामों को उचित दिशा प्रदान की जाए तो बालक का विकास सकारात्मक होता है।

Q(2) कोहलवर्ग का नैतिक विकास का सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

Ans: - बालकों में मानसिक तथा बौद्धिक विकास को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। परन्तु बालकों में नैतिक तथा चारित्रिक गुणों का विकास भी अत्यंत आवश्यक है। बालकों में नैतिक विकास की प्रक्रिया को केंद्री भागें बढ़ाया जाए, इसके लिए मनोवैज्ञानिकों तथा अनेक स्वयंसेवकों के द्वारा समय-समय पर अनेक कोशिशों की गई हैं। इनमें लॉरेन्स कोहलवर्ग द्वारा किया गया प्रयत्न काफी सराहनीय तथा महत्वपूर्ण माना जाता है। कोहलवर्ग ने इस दिशा में 1976 में अनेक अनुसंधान करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि बालकों में नैतिकता या चरित्र के विकास की कुछ निश्चित तथा तार्किक-गौणिक अवस्थाएँ होती हैं। ये मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं:-

(a) पूर्व नैतिक स्तर (4 वर्ष से 10 वर्ष तक)

(b) आत्मकेन्द्रित नैतिक मुख्य स्तर

(c) परम्परागत नैतिक स्तर

कोहलवर्ग द्वारा प्रतिपादित इन तीन अवस्थाओं का वर्णन पाँच भागों में विभाजित कर इस प्रकार है।

(1) पूर्व नैतिक अवस्था :- कोहलवर्ग के अनुसार यह अवस्था जन्म से लेकर दो वर्ष तक होती है। इस अवस्था में बालक का विकास इतना नहीं होता है कि वह नैतिक गुणों को समझ सके। वह अपना मनचाहा व्यवहार करता है। वह हर हाल में अपनी जिद पूरी करके रहता है। वह अपनी बात हर हाल में मनवाकर रखे है चाहे इसके लिए उसे रोना, चिल्लाना पड़े तथा तोड़-फोड़ या किसी वस्तु को फेंककर अपनी भावनाओं अथवा क्रोध को प्रदर्शित करना पड़े। वह इसके लिए हर प्रकार के प्रयत्न करता है।

(2) आत्मकेन्द्रित नैतिक स्तर :- इस स्तर की अवस्था 3 वर्ष से 6 वर्ष तक माना गया है। इस अवस्था में बालक का प्रसिद्ध और विकसित हो जाता है। परन्तु उसकी सभी गतिविधियाँ तथा क्रियाएँ अपने ही स्वार्थ या इच्छाएँ

पूरी करने तक सीमित रहती है। वह उसी को सही मानता है जो उसके स्वयं के लिए सही है। सिर्फ खुद को खुश रखने के लिए वह सही क्रिया करता है। कुछ बालकों में यह आत्म-तुष्टि की प्रवृत्ति बचपन में ही इसी गहन हो जाती है कि वह खुवा होने पर भी इस प्रवृत्ति को छोड़ नहीं पाता। ये गुण उसके व्यक्तित्व में शामिल होता है। वे अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी अन्य का मुक़दम करने से भी नहीं हिचकिचाते। यह प्रवृत्ति बहुत से असामाजिक कार्यों का भी कारण बन जाती है।

(3) परम्पराओं और मूल्यों को अपनाने वाली अवस्था :- यह अवस्था 7 वें वर्ष से आरंभ होकर 12 या 13 वर्ष की अवस्था तक मानी जाती है जो कि उसका (किशोरवस्था) आरंभिक समय है। इसमें बालक में अच्छे-बुरे की समझ आनी शुरू हो जाती है। वह समाज के नियमों को समझने लगता है। तथा सामाजिक तथा पारिवारिक परम्पराओं को जानकर उनका अनुसरण करता है। इस प्रकार इसमें नैतिक विकास होता है। और इस बात की समझ हो जाती है कि किस प्रकार वह दूसरों के साथ अच्छाई कर सकता है तथा उसके किस काम से दूसरों को हानि पहुंच सकती है। कुछ बालक तो इस अवस्था तक आते-आते मानसिक रूप से अत्यंत परिपक्व हो जाते हैं।

(4) निराधार आत्मानुभूति अवस्था :- यह अवस्था किशोरवस्था में दिखाई देती है। इस अवस्था में किशोरों में मानसिक इन्द्र की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इसमें महं प्रवृत्ति के विकास के कारण वह अच्छे-बुरे का विचार किए बिना अपनी मर्जी का आचरण करता है तथा खुद को सर्वोपरि समझने लगता है। वह अपनी खुद की चारणाओं की विकसित करता है तथा इन्हीं को सही मानकर सामाजिक परम्पराओं तथा मान्यताओं का विरोध करता है। वह अनेक प्रकार के संकेतों तथा भावों से प्रभावित होकर किसी विषय या विचार की सत्यता पर विचार नहीं करता बल्कि अपने कामों और कियारों को ही प्रधानता देता है। उसका नैतिक तथा चारित्रिक विकास करके हमें उनकी इस क्षमता को समाज की शक्ति का आधार बना चाहिए।

(5) साधारण आत्मन्यतना (आत्मानुभूति) अवस्था :- यह अवस्था

तब आती है जब बालक पूरी तरह से परिपक्व हो जाता है। इस अवस्था में बालक में केवल भावनाओं की प्रधानता नहीं रहती बल्कि वह अपनी सभी मानसिक क्षमताओं का प्रयोग कर, सौच समझकर नैतिक चुणुओं को अपने आचरण तथा व्यवहार में शामिल करता है तथा वह उसके व्यक्तित्व का ही भाग बन जाते हैं। वहीं निर्णय को अच्छाई या बुराई की तरह तक जाकर करता है। वह हर तब्य को तर्क की कसौटी पर तौल कर अच्छी तरह समझकर ही सत्य मानता है। इस प्रकार यह व्यक्ति के नैतिक तथा चारित्रिक विकास की आदर्श तथा अंतिम अवस्था होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कोहलबर्ग ने नैतिक विकास के स्तर की बालक की उम्र के अनुसार मानसिक विकास के स्तर की ध्यान में रखते हुए विभिन्न अवस्थाओं में बाँटा है। व्यक्ति का नैतिक विकास उस वक्त चरम अवस्था में होता है जब वह किशोरावस्था को पार करता हुआ युवावस्था में प्रवेश करता है तथा इस अवस्था में उसका नैतिक तथा चारित्रिक विकास अधिकतम होता है।

Q (3.) हरिकसन के मनो सामाजिक सिद्धांत की व्याख्या करें। अथवा हरिकसन के सामाजिक और संवेगात्मक विकास के सिद्धांत का वर्णन करें।

Ans: - प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक Erik Erikson ने मनो सामाजिक विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस सिद्धांत को 'हरिकसन का मानव-विकास चक्र का सिद्धान्त' भी कहा जाता है। जो कि विकास का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत माना जाता है। इस सिद्धांत में बालकों तथा वयस्कों सभी के विकास पर जल दिया गया है।

मनोसामाजिक अवस्थाओं की विशेषताएँ :-

(1.) हरिकसन के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के सात रैदी मनोसामाजिक दशा उत्पन्न होती हैं जिससे व्यक्ति के जीवनकाल में सँघर्षपूर्ण स्थिति बन जाती है। जब मनुष्य मानसिक रूप से परिपक्व होता है तथा उसकी कुछ सामाजिक आवश्यकताएँ प्रकट हो जाती हैं। उन सामाजिक आवश्यकताओं तथा जैविक परिपक्वता के बीच अन्तः क्रिया होने से उसमें एक विरोधाभास तथा तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(2.) मनुष्य के जीवन में होने वाली मनोसामाजिक दशाओं में कुछ तत्व रैदी होते हैं जो व्यक्ति पर कुछ सकारात्मक प्रभाव डालते हैं तथा कुछ नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। जो व्यक्ति अपने विवेक के द्वारा इस

महत्वपूर्ण स्थिति में सामंजस्य बैठा पाता है उसके व्यक्तित्व का विकास ठीक प्रकार से होता है तथा उसमें नकारात्मक तत्व नहीं आते।

(3.) अगर मनुष्य इन मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं में उत्पन्न संतुलित स्थिति का झुझ-झुझ से सामना नहीं करता है तो उसका मानसिक विकास अवरुद्ध ही जाता है तथा वह विकास के अगले पड़ाव तक नहीं पहुँच पाता।

(4.) हरिकसन के अनुसार व्यक्ति अगर अपने सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन में उत्पन्न होने वाले समस्यापूर्ण स्थिति का सामना झुझ-झुझ तथा चर्च के साथ करता है, तो उसके अंदर उसे एक नवीन शक्ति के उत्पन्न होने का आभास होता है। इस शक्ति को 'लटाचार' कहा जाता है। यह एक प्रतीक शक्ति है।

सिद्धांत की व्याख्या :-

हरिकसन ने अपने सिद्धांत में इस बात पर बल दिया है कि सभी मनुष्यों का व्यक्तित्व तथा व्यवहार केवल उसके जन्म से ही नहीं होता बल्कि जन्म के बाद के वातावरण तथा परिस्थितियों से प्रभावित होता रहता है। हरिकसन ने अपने मनोवैज्ञानिक सिद्धांत में मनुष्य की भाव के आठ अवस्थाओं का वर्णन किया है जो मन और समाज के संबंध में मानव व्यवहार का अध्ययन करती हैं। हरिकसन के अनुसार मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास कई अवस्थाओं से होकर गुजरता है तथा ये अवस्थाएँ पहले से निर्धारित होती हैं तथा सार्कभौतिक होती हैं।

हरिकसन के सिद्धांत के गुण :-

(1.) इस सिद्धांत में व्यक्ति के व्यवहार को सामाजिक परिस्थितियों से जोड़कर अध्ययन किया है।

(2.) इस सिद्धांत में किशोरावस्था में होने वाले परिवर्तनों पर प्रकाश डाला गया है।

(3.) इस सिद्धांत में व्यक्ति के निराशावादी इच्छाओं के साथ आशावादी इच्छाओं को भी शामिल किया गया है। क्योंकि इस सिद्धांत में असफलता के साथ-साथ सफलता की भी बात कही गई है। यह आशावादी

इसिकोण का परिचायक है।

(4) हरिकसन ने अपने सिद्धांत में व्यक्ति की आरंभ से अंत तक की सभी मनोसामाजिक अवस्थाओं की विभिन्न ढंग से चर्चा की गई है।

हरिकसन के सिद्धांत के अवगुण :-

हरिकसन के सिद्धांत में मुख्य दोष आलोचकों ने इस प्रकार बताये हैं

(1.) कुछ विद्वानों का कहना है कि हरिकसन का सिद्धांत फ्रायड के व्यक्तित्व के सिद्धांत का ही प्रतिरूप है। हरिकसन ने केवल इसे और अधिक सरल बना दिया है।

(2.) हरिकसन के सिद्धांत में अधिक आशावादी इसिकोण अपनाया है।

(3.) हरिकसन ने कहा है व्यक्ति बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों में समायोजन करके ही एक उत्तम नागरिक बन सकता है। परन्तु ऐसा संभव हो जाती नहीं है।

(4.) शुब्ज नामक मनोवैज्ञानिक ने हरिकसन के सिद्धांत की अंतिम मनोसामाजिक अवस्था की आलोचना करते हुए कहा है कि हरिकसन ने इस अवस्था का पूर्व तथा स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया है। उनके अनुसार अंतिम अवस्था में व्यक्ति का विकास उतना नहीं होता जितना की हरिकसन ने वर्णन किया है।

Q(4.) जनसंचार माध्यमों का दायों पर क्या प्रभाव पड़ते हैं?

Ans: - आधुनिक युग तकनीकी का युग है। तकनीकी ने उद्योग, कृषि, वृचना आदि क्षेत्रों में महान् क्रांति का सुत्रपात किया है। आधुनिक युग में तकनीकी के माध्यम से मनुष्य की कार्य करने की क्षमता एवं कुशलता में अविस्मरणीय वृद्धि हुई है। सभी क्षेत्रों में तकनीकी का प्रयोग बढ़ गया है। शिक्षा का क्षेत्र भी इससे काफी प्रभावित हुआ है। जनसंचार के माध्यम से औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा का कार्य भी सुचारु रूप से चलता है। विशेषतः बड़े शहरों में जनसंचार माध्यमों का अधिक प्रयोग किया जाता है क्योंकि वहाँ पर सुविधाओं का उपलब्ध कराना आसान होता है। छोटे शहरों में जनसंचार सुविधाओं का प्रयोग सीमित होता है।

संचार साधनों का अर्थ :- ग्रीकिया शब्द लैटिन भाषा से लिया गया है, जिसका अर्थ है - मध्य. अर्थात् जो दो के अलावा तीसरा तत्व है जो उन क्षेत्रों में कड़ी का काम करे। मार्शल-पैहकलन के अनुसार - "संचार मनुष्य के लिए वह साधन है जो इसे उन लोगों को प्रभावित

करने योग्य बनाता है जो उसके आसने - पासने संपर्क में नहीं है।" संचार विभिन्न साधनों का समूह है। संचार साधन अनुदैर्घ्यात्मक साधन समझे जाते हैं।

जनसंचार का अर्थ :- जनसंचार साधनों से अप्रिप्राय इन साधनों से है जो जन-साधारण को किसी विषय के बारे में सूचना देने का कार्य करते हैं। ये वे माध्यम होते हैं जिसके द्वारा विचार, मनोवृत्तियाँ और प्रभाव लगातार लोगों तक पहुँचाने का प्रयास किया जाता है। प्रकाशित तथा अप्रकाशित जनसंचार के माध्यमों से जीवन की गति कई गुण बढ़ गई है। न केवल पुस्तकें, समाचार-पत्र, मैगजीन, पम्फलेट, शब्दकोष आदि प्रकाशित संचार साधन हैं, अपितु रेडियो, टी.वी. चलचित्र, कम्प्यूटर, इ-सूनेट, ई-मेल विडियो डिस्क आदि अप्रकाशित साधन भी हैं। इन साधनों के माध्यमों से दूरवर्ती एवं दुरगम क्षेत्रों के विद्यार्थियों तक पहुँचाने तथा शिक्षा से वंचित बालकों के पास शिक्षा आसानी से उपलब्ध हो जाती है। शिक्षा में असमानता केवल जनसंचार माध्यम से ही कम की जा सकती है।

जनसंचार माध्यमों का दानों पर प्रभाव :-

जनसंचार माध्यमों का दानों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। दान इन माध्यमों का उपयोग कर चर बेंडें अपनी परेशानियों को दूर कर लेता है। नई-नई जानकारी को इकट्ठा करता है और वे अपनी शिक्षण कला को प्रभावी बनाते हैं। जनसंचार के माध्यम से दान अपना समय भी बचत कर पाते हैं। उन्हें घर बैठे अन्तर्राष्ट्रीय चरना की जानकारी प्राप्त होती है तथा इनमें राष्ट्रियता की भावनाओं का भी विकास होता है।

दानों की जनसंचार माध्यमों से उनके मनोविन के उद्देश्य की भी पूर्ति हो जाती है। वे इन माध्यम का प्रयोग कर व्यवसायिक उद्देश्य का भी लाभ प्राप्त करते हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि जनसंचार माध्यमों का प्रयोग कर दान अपनी कुशलता में बृद्धि कराते हैं और अपने शैक्षणिक स्तर को भी बढ़ाते हैं।

जनसंचार माध्यम द्वारा बनायी गई छवियों के दुष्प्रभाव :-

- (a) भारतीय संस्कृति का पतन :- सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति का लौहा प्राण जाता है। इस संस्कृति में समाज से संबंधित सभी विशेषताएं सम्मिलित हैं। जनसंचार के माध्यमों के द्वारा भारत के सभी मूल्यों का पतन होता दिखाई दे रहा है।
- (b) विदेशी संस्कृति को बढ़ावा :- जनसंचार माध्यम विदेशी संस्कृति को ही ज्यादा महत्व दे रहा है। विदेशी संस्कृति में प्रयोजनवाद को बढ़ावा दिया जाता है। प्रयोजनवाद अर्थात् जो उपयोगी है इस संसार में वही सत्य है। भारतीय संस्कृति में आज यही प्रवृत्ति दिखाई दे रही है।
- (c) अश्लीलता को बढ़ावा :- जनसंचार के माध्यम से आज बुरे समाज को यह सिखाने का प्रयास किया जाता है कि मैं अपने शरीर की सभी इच्छाओं को जैसे चाँदूँ, जब चाँदूँ, जहाँ चाँदूँ पूरा कर सकता हूँ। इसी के द्वारा अश्लीलता को बढ़ावा मिल रहा है।
- (d) अपराध को बढ़ावा :- जनसंचार के माध्यमों के द्वारा आज समाज में अपराधों की संख्या में बढ़ी हुई है। किसी भी अपराध को करने के लिए हाथ उठाने करने का तरीका और बचने का तरीका जनसंचार माध्यम से ही निकाल लेता है।
- (e) सामाजिक मूल्यों का पतन :- जनसंचार माध्यम ने आज व्यक्ति को समाज से पूर्णतः दूर कर दिया है। व्यक्तिगत जीवन को अधिक महत्व दिया जाता है।

35.) अभिरुची से आप क्या समझते हैं? इसकी विस्तार से चर्चा करें।

Ans:- अभिरुची का अर्थ :- किसी काम के प्रति आकर्षण अभिरुची है। यह वंशानुक्रम से संबंधित होती है। अभिरुची लम्बे समय तक चलती है।

अभिरुची की परिभाषाएं :-

(a) बिंघम के अनुसार :- "अभिरुची व्यक्तित्व के व्यवहार के उन विशेष गुणों की ओर संकेत करती है। जो यह बताते हैं कि वह व्यक्ति कि-ही विशेष प्रकार की समस्याओं का किस प्रकार सामना करेगा और उन्हें कैसे हल करेगा।"

(b) हेवेलर के अनुसार, "अभिरुची वह वर्तमान दृष्टा है जो व्यक्ति की आविष्य की क्षमताओं की ओर संकेत करता है। प्रायः देखा जाता है कि प्रत्येक ~~व्यक्ति~~ व्यक्ति एक

दूसरे से भिन्न होते हैं। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों - नैतिक, संगीत, कला, कृषि एवं शिक्षण में उनका कार्य-स्तर भी अलग-अलग होता है। अभिरूचियों कुछ योग्यताओं तथा कुशलताओं को स्वीकारने की क्षमता है जो कार्य के किसी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए अनिवार्य होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अभिरूचि किसी व्यक्ति की वर्तमान दृशा या चुनौतियों का समुच्चय है जो उसकी क्षमताओं की ओर संकेत करता है।

* अभिरूचि के प्रकार : -

(1) संवेद्यात्मक अभिरूचि : - संवेद्यात्मक अभिरूचि का संबंध बालक की क्षमताओं और योग्यताओं से है।

(2) प्रशीनरी अभिरूचि : - प्रशीनरी अभिरूचि का संबंध शारीरिक कार्यों से होता है। इसमें बालक की रुचि प्रशीनों की प्रशस्त तथा प्रशीनी कार्यों में होती है।

(3) कलात्मक अभिरूचि : - इसमें बालक की अभिरूचि संगीत, फोटोग्राफी, कविता, रचना, नृत्यात्मक, कला आदि में होती है।

(4) व्यवसायिक अभिरूचि : - इसमें बालक की अभिरूचि व्यवसाय से संबंधित होती है। बालक जिस व्यवसाय में रुचि रखता है, वह उसी वर्ग में कार्य करता है।

(5) शैक्षिक अभिरूचि : - शिक्षा के प्रति रुचि संबंधी क्षेत्रों में बालक की जो रुचि होती है, वह शैक्षिक अभिरूचि होती है। जैसे - प्रोटिकल, वाणिज्य, इंजीनियरिंग आदि क्षेत्रों में रुचि लेना।

* अभिरूचि का मापन : -

विभिन्न अभिरूचियों के मापन के लिए अभिरूचि परीक्षाओं का निर्माण किया गया है। प्रायः इन परीक्षाओं को अभिरूचियों की विशिष्ट प्रकृति के अनुसार निम्न वर्गों में बाँटा गया है : -

(1) मैकेनिकल अभिरूचि परीक्षाएँ : -

बुद्धि के समान, मैकेनिकल अभिरूचि भी कई भागों की बनी है। इसके अर्थ को स्पष्ट करते हुए फ्रीमैन ने लिखा है - "मैकेनिकल अभिरूचि एक आकेली क्रिया नहीं है बल्कि यह वैज्ञानिक योग्यता,

गत्यात्मक योग्यता, स्थानों संबंधी बोधगम्यता, मैकेनिकल कार्यों के संबंध में सूचना एकत्रित करने की योग्यता और मैकेनिकल संबंधों को समझाने की योग्यता का मिश्रण है।

12.) कुलकी संबंधी अभिरुचि परीक्षाएँ : - मैकेनिकल के सामान, क्लर्की में भी कुछ क्रियाओं का मिश्रण होता है।

(a) पहचानने की योग्यता : - शब्दों तथा अंकों को शुद्ध रूप में तथा तेजी से पहचानने की योग्यता।

(b) बौद्धिक योग्यता : - शब्दों तथा प्रतीकों के अर्थ समझने की योग्यता।

(c) गत्यात्मक योग्यता : - विभिन्न प्रकार की मशीनों जैसे- राइपर, राइटर, डुप्लीकेट, ट्राईकोस्टॉल मशीन, पेंसिंग मशीन, आदि के प्रयोग की योग्यता।

13.) संगीतात्मक अभिरुचि परीक्षाएँ : - संगीतात्मक प्रतिभा की खोज के लिए इन परीक्षाओं का निर्माण किया गया है।

14.) शैक्षिक तथा व्यवसायिक अभिरुचि परीक्षाएँ : - विभिन्न विशिष्ट क्षेत्रों या व्यवसायों जैसे - इंजीनियरिंग, चिकित्सा, कानून, व्यापार, प्रबंध, शिक्षण आदि के लिए उचित विद्यार्थियों का चुनाव करने हेतु विभिन्न अभिरुचि परीक्षाओं का निर्माण किया गया है।

अभिरुचि तथा रुचि में अंतर : -

किसी भी कार्य में आवश्यक सफलता के लिए व्यक्ति को उस कार्य में रुचि और अभिरुचि दोनों का होना आवश्यक है। रुचि और अभिरुचि दोनों एक साथ चलते हैं। परन्तु इन्हें एक नहीं समझना चाहिए। इन दोनों में अंतर है। ही सकता है कोई व्यक्ति किसी कार्य में रुचि तो लेता है परन्तु उस व्यक्ति की अभिरुचि नहीं होती ऐसी स्थिति में किसी विशिष्ट कार्य या अध्ययन में रुचि लेने का कारण अभिरुचि की बजाय कुछ और ही हो सकता है जैसे - प्रलोभन, माता-पिता की आकांक्षा, नौकरी प्राप्त करने की संभावना आदि। व्यक्ति को किसी व्यवसाय या परीक्षण क्षेत्र में भावी सफलता के लिए उसकी अभिरुचि तथा रुचि दोनों का ज्ञान होना आवश्यक है।



Q NO(6) सृजनात्मकता के संप्रत्यय का वर्णन कीजिए। विद्यार्थियों में सृजनात्मकता बढ़ाने की क्या तकनीकी है? वच्चों में सृजनात्मकता को कैसे विकसित किया जा सकता है?

Ans: - सृजनात्मकता :- संसार का प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग प्रतिभाओं से सम्पन्न है। इनमें से कई व्यक्तियों में उच्च स्तरीय सृजनात्मक प्रतिभाएँ होती हैं। प्रतिभाओं तथा योग्यताओं के विकास में शिक्षा तथा वातावरण का विशेष महत्व है। इसमें माता-पिता, समाज तथा शिक्षक आपसी भूमिका निभा सकते हैं। प्रमुख व्यक्तियों में लिंकन, -यूटन, गोकसपीयर आदि नाम हैं, जो सृजनात्मक व्यक्ति थे जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्रों में विशिष्ट ख्याति प्राप्त की।

सृजनात्मकता की परिभाषाएँ :-

(a) हेइगनर तथा कारोस्की :- "किसी नई वस्तु का पूर्ण या आंशिक उत्पादन सृजनात्मकता है।"

(b) ड्रेवडाल :- "सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा उन वस्तुओं या विचारों का उत्पादन करता है जो अनिर्धार्य रूप से नए हों और जिन्हें वह व्यक्ति पहले से न जानता हो।"

इस परिभाषा के आधार पर यह कह सकते हैं कि किसी नई वस्तु का निर्माण या किसी नई वस्तु की खोज सृजनात्मकता है। इस प्रकार सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी नए विचार या नई वस्तु का निर्माण करता है या नई वस्तु की खोज करता है। इसमें व्यक्ति का पूर्व ज्ञान भी शामिल है।

वच्चों में सृजनात्मकता विकसित करना :-

अध्यापक तथा माता-पिता सृजनात्मक योग्यता के विकास के लिए उचित वातावरण तथा परिस्थितियों की व्यवस्था कर सकते हैं। यह समस्या कठिन है, पर इका समाधान भी है। उचित अभिवृत्तियाँ तथा परिस्थितियों द्वारा सृजनात्मक योग्यताओं को विकसित कर सकते हैं। सृजनात्मकता को विकसित करने के लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं -

(a) उत्तर देने की स्वतंत्रता :- वच्चों की उत्तर देने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता देनी चाहिए। उन्हें समस्या का समाधान करने के लिए अधिक से अधिक विचारों का चिन्तन करने के

लिफ्ट उत्साहित करना चाहिए। इससे बच्चों में सृजनात्मकता विकसित होगी।
(b) झिझक और डर को दूर करना - डर तथा हीनभावना से सृजनात्मक अभिव्यक्ति में बाधा पहुँचती है। झिझक तथा डर के कारण बच्चे अपने सृजनात्मक कार्यों में बाधा महसूस करते हैं। इस प्रकार के डर तथा झिझक के कारणों को यथासंभव दूर करने का प्रयास करना चाहिए। अध्यापक एवं माता-पिता को बच्चों को कुछ करने तथा लिखने की प्रेरणा देनी चाहिए।

(c) बच्चों में स्वस्थ भावनाओं का विकास करना :- बच्चों में आत्मशीलता, आत्म-निर्भरता, आत्म-विश्वास आदि गुणों का विकास करना चाहिए।

(d) उदाहरण एवं आदर्श प्रस्तुत करना :- भक्तर बच्चे माता-पिता, अध्यापक का ही हमेशा अनुसरण करते हैं, जो माता-पिता तथा अध्यापक नया अनुभव नहीं करते वे अपने बच्चों में सृजनात्मकता का विकास नहीं कर सकते। अतः उन्हें परिवार, नवीनता तथा मौलिकता में विश्वास करना चाहिए।

सृजनात्मकता के विकास के लिए विभिन्न तकनीकें :-

सृजनात्मकता के विकास के लिए विभिन्न तकनीकें एवं विधियों को प्रयोग में लाया जा सकता है। उनमें से प्रमुख तकनीकें निम्न हैं।

(1.) मस्तिष्क उद्दोलन :- मस्तिष्क उद्दोलन एक ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा किसी समूह विशेष से बिना किसी रोक-टोक, आलोचना, मूल्यांकन या निर्णय की परवाह किए बिना किसी समस्या विशेष के हल के लिए विभिन्न प्रकार के विचारों एवं समाधानों को शीघ्रता से प्रस्तुत करने के लिए कहा जाता है और फिर विचार-विमर्श के बाद उचित हल या समाधान चुनने का प्रयास किया जाता है।

(2.) शिल्पा प्रतिमानों का प्रयोग :- कुछ विशेष शिल्प प्रतिमानों का प्रयोग भी बालकों की सृजनात्मकता के विकास में पर्याप्त योगदान दे सकता है। जैसे - खनर का संप्रत्यय उपलब्धि प्रतिमान आदि।

(3.) क्रीडन तकनीकों का प्रयोग :- खेल-खेल में ही सृजनात्मकता का विकास करने की दृष्टि से क्रीडन तकनीकों का अपना एक विशेष स्थान है।

अतः हम कह सकते हैं कि इन तकनीकों द्वारा बालकों में सृजनात्मकता को अपने-अपने विचारों तथा बुझानों द्वारा विकसित किया जा सकता है। यह अनिवार्य नहीं है कि बच्चे अपने हीनर विचार प्रस्तुत करें बल्कि दूसरे के विचारों में फेरबदल द्वारा सृजनात्मकता को विकसित कर सकते हैं।

Q (7.)

गार्डनर का बहु-बुद्धियों का सिद्धांत की व्याख्या करें।

Ans: - बहु-बुद्धि का सिद्धांत लोगों एवं उनकी विभिन्न प्रकार की प्रतिभाओं (तार्किक, दृश्य-संबंधी, संगीत आदि) के बारे में हार्वर्ड गार्डनर का एक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत है। इसका प्रतिपादन 1983 में हुआ। इस सिद्धांत के द्वारा बुद्धि की अवधारणा को और अधिक गूढ़ता से परिभाषित किया गया है और यह देखने की कोशिश की गयी है कि बुद्धि को मापने के लिए पहले से मौजूद सिद्धांत किना कारगर है।

गार्डनर के बहु-बुद्धि सिद्धांत के अनुसार परम्परागत रूप से परिभाषित बुद्धि की परिभाषा बहुत सीकीर्ण है और यह मानव में मौजूद विविध प्रकार की क्षमताओं का समुचित इलेख नहीं करता है। इसके अनुसार, वह बच्चा जो आसानी से पहाड़ चढ़ कर लेता है जरूरी नहीं है कि ऊपरी बच्चे से अधिक प्रभावशाली ही जिसे पहाड़ चढ़ करने में कठिनाई होती है। ही सकता है कि ऊपरी बच्चा किसी ऊपरी तरह की बुद्धि में अधिक बुद्धिमान ही।

गार्डनर का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति में सात प्रकार की प्रतिभाएं होती हैं। किसी व्यक्ति में दो या दो से अधिक प्रधान प्रतिभाएं ही सकती हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनमें सात प्रतिभाएं समुचित रूप से होती हैं। गार्डनर द्वारा दिए गए बुद्धि के नये इंडिकेज की विद्यालय पाठ्यक्रम में तेजी से शामिल किया जा रहा है।

गार्डनर ने जैविक और सांस्कृतिक शोध का उपयोग करके सात बुद्धियों की एक सूची बनाई। बुद्धि का यह नया इंडिकेज परम्परागत इंडिकेज से बहुत अलग था, जो सामान्य तौर पर केवल दो प्रकार की बुद्धियों को पहचानता है - मौखिक एवं गणनात्मक।

सात बुद्धियों को गार्डनर ने इस प्रकार दर्शाया है: -

(1) आधुनिक - जिन लोगों में आधुनिक बुद्धि अच्छी होती है वह शब्दों के दोनो प्रकार के उपयोग, लिखित और मौखिक, में अधिक लक्ष्म होते हैं। यह लोग खालकर कदारी लेखन या कविता लेखन सूचना संग्रहण और पढ़ने में अच्छे होते हैं।

(2) संगीतात्मक बुद्धि: - वह लोग जिनमें अधिक संगीतात्मक

बुद्धि होती है, वह स्वप्न, प्रबलता, लय और चरित्र रूप क्रियाओं में अच्छे होते हैं। ऐसे लोगों में संगीत के लिए मजबूत प्रवृत्ति होती है और यह अक्सर संगीतात्मक संरचना और प्रदर्शन में अच्छे होते हैं।

(3.) तार्किक गणितीय : - यह बुद्धि अक्सर वैज्ञानिक और गणितीय सोच के साथ जुड़ी होती है। वह लोग जो तार्किक - गणितीय बुद्धि में मजबूत होते हैं वह तर्क तरीकों को पहचानने और समस्याओं को तार्किक रूप से विश्लेषण करने में अच्छे होते हैं। यह संख्याओं, संबंधों और तरीकों के बारे में सम्प्रत्यय के रूप में सोचते हैं।

(4) दैहिक बुद्धि : - जो लोग दैहिक बुद्धि में मजबूत होते हैं वह चीजों को दर्शाने में बहुत अच्छे होते हैं। यह लोग अक्सर दिशाओं के विषय में और साथ ही नक्शों, चार्ट, विडियो और पिक्चर विषय में अच्छे होते हैं।

(5) शारीरिक गतिज बुद्धि : - वह लोग जो शारीरिक गतिज बुद्धि में अच्छे होते हैं, वह शारीरिक क्रियाओं, कार्यों, कार्यों के प्रदर्शन और शारीरिक नियंत्रण में अच्छे होते हैं। वे आंखों और हाथ के समन्वय में उत्कृष्ट होते हैं। यह बुद्धि लोकप्रिय विश्वास की मानसिक और शारीरिक क्रियाओं से संबंधित नहीं होती, बल्कि ऊंची को चुनौती देती है।

(6.) अन्तरवैयक्तिक बुद्धि : - जो लोग अन्तरवैयक्तिक बुद्धि में अच्छे होते हैं वह दूसरों को समझने व उनसे अन्तःक्रिया करने में बहुत अच्छे होते हैं। यह लोग आस-पास के लोगों की भावनाओं, अभिप्रेरणकों, इच्छाओं और नियत को ध्यान में रखते हैं।

(7.) स्वागत बुद्धि : - वह लोग जो स्वागत बुद्धि में मजबूत होते हैं वह अपने स्वयं के रहस्यों, भावनात्मक परिस्थितियों और अभिप्रेरणकों के बारे में अवगत होने में अच्छे होते हैं। यह आत्म-निरीक्षण और विश्लेषण, दिवास्वप्न देखने, दूसरों के साथ रिश्ते रखने और अपने व्यक्तिगत शक्तियों के आकलन में आनंद प्रदत्त करते हैं।

गार्डनर के सिद्धांत में वैज्ञानिकों और शिक्षकों दोनों के द्वारा आलोचना की गई। इन आलोचकों ने कहा कि गार्डनर का सिद्धांत बहुत अभिव्यक्त है। यह सिद्धांत अनुभवजन्य शोध की कमी से अज्ञात है।

इन सब बातों के बावजूद, बहु-बुद्धि का सिद्धांत शिक्षकों में काफी लोकप्रियता प्राप्त करती है। बहुत से शिक्षक बहु-बुद्धि के सिद्धांत को अपने-अपने शिक्षण दर्शन में उपयोग करते हैं और गार्डनर के सिद्धांत की कल्पना में स्वीकृत करते हैं।

Q(8.) अधिगम को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारणों की विवेचना करें।

Ans: - अधिगम को प्रभावित करने वाले मुख्य तीन कारक होते हैं।

(a) व्यक्तिगत कारण (b) वातावरणीय कारण (c) पार्श्व-पुस्तक संबंधी कारण।

(a) अधिगम को प्रभावित करने वाले व्यक्तिगत कारक :-

एक बच्चा जब अधिगम की प्रक्रिया से गुजरता है तब उसकी यह प्रक्रिया अनेक कारणों से प्रभावित होती है।

(1) शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य - अधिगम प्रक्रिया में बच्चों को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला कारक उनका शारीरिक स्वास्थ्य होता है। यदि किसी बच्चे को शारीरिक रूप से कोई कठिनाई हो तो उसका पूरा ध्यान अपनी तकलीफ की तरफ रहता है और अधिगम क्रिया ठीक से नहीं हो पाती। यदि कोई बच्चा मानसिक रूप से परेशान हो तो वह अधिगम क्रिया में ध्यान नहीं लगा पाता है।

(2) अधिगम की तत्परता :- थॉर्नडाईक के अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी कार्य को सीखने के लिए तत्परता नहीं दिखाता, यदि कार्य सीखने की इच्छा नहीं रखती है तो वह उस कार्य को सीख ही नहीं पाता है। यदि तत्परता दिखाता है तो शीघ्र उस कार्य को सीख लेता है।

(3) बुद्धि का स्तर - यदि बच्चे की बुद्धि का स्तर अधिक होता है तो वह किसी कार्य को तीव्र गति से सीख लेता है और यदि बुद्धि का स्तर कम होता है तो उसी कार्य को सीखने में बच्चे को अधिक समय लगता है।

इसके अलावा बच्चों की योग्यताएँ और परिपक्वता भी अधिगम की क्रिया को प्रभावित करते हैं।

(b) अधिगम को प्रभावित करने वाले वातावरणीय कारक :- अधिगम को प्रभावित करने वाले वातावरण से संबंधित कुछ मुख्य कारक इस प्रकार हैं :-

(1) पारिवारिक वातावरण :- बालक की अधिगम प्रक्रिया पर उसके परिवार के वातावरण का काफी प्रभाव पड़ता है। यदि परिवार में कुल-पूर्ण वातावरण हो तो बच्चे पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसलिए परिवार का वातावरण स्नेहपूर्ण होना चाहिए ताकि बच्चों को जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन मिले।

(2) कक्षा का वातावरण :- कक्षा का वातावरण बच्चों के अधिगम

की बहुत अधिक प्रभावित करता है। कक्षा में यदि बच्चों के बैठने, चलने-फिरने तथा पढ़ने के लिए उचित व्यवस्था नहीं होती है तो ऐसे वातावरण में बच्चे ध्यानपूर्वक अधिगम का कार्य नहीं कर पाते हैं।

13.) विद्यालय का वातावरण :- यदि विद्यालय में अनुशासन अधिक होता है तो बच्चे वहाँ अटिगा महसूस करते हैं। अनुशासनहीनता अधिक हो तो बच्चों का ध्यान पढ़ाई में नहीं रहता और बिगड़ने का भय रहता है। विद्यालय में अनुशासन में संतुलन आवश्यक है ताकि बच्चों की अधिगम कार्य में बाधा न आए।

14.) सामाजिक वातावरण :- सामाजिक वातावरण में समाज के रीतिरिवाज, मान्यताएँ, आदर्श और मूल्य आदि आते हैं। यह सभी बच्चों द्वारा ग्रहण किये जाने वाले अधिगम को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं क्योंकि बच्चे खुद भी इसी समाज का एक हिस्सा होते हैं और समाज से जुड़े होते हैं।

15.) अध्यापक का व्यक्तित्व :- अध्यापक के व्यक्तित्व के गुण एवं व्यवहार बच्चों के अधिगम प्रक्रिया में सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार से भूमिका निभाते हैं।
पाठ्य-पुस्तक से संबंधित कारक :-

अधिगम से संबंधित कारक को प्रभावित करने वाले पाठ्यपुस्तक से संबंधित कुछ मुख्य कारक इस प्रकार हैं :-

1.) विषयवस्तु की प्रकृति एवं आकार :- विषयवस्तु की प्रकृति अधिगम प्रक्रिया को को पूर्ण रूप से प्रभावित करती है। सीखने वाली वस्तु यदि सरल है तो मध्यम श्रेणी का छात्र उसे सरलता से सीख सकता है और यदि विषय वस्तु कठिन है तो छात्रों को सीखने में कठिनाई का अनुभव होता है।

2.) भाषा शैली :- सीखने की प्रक्रिया में भाषा शैली का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। प्रत्येक लेखक का विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण का तरीका भिन्न होता है। एक अच्छे लेखक की यह पहचान होती है कि वह कठिन पाठ्यपुस्तक को भी सरल भाषा में व्यक्त कर छात्रों के लिए पाठ्य-वस्तु सरल बना देते हैं।

3.) दृश्य श्रव्य सामग्री :- अधिगम को तेजक बनाने में दृश्य श्रव्य सामग्री का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। कठिन से कठिन पाठ्य वस्तु को भी दृश्य श्रव्य सामग्री के उपयोग से सुगम बनाया जा सकता है।

4.) रुचिकर विषय वस्तु :- यदि पाठ्यवस्तु रुचिकर है तो छात्र उसे खुब मन लगाकर पढ़ते हैं और यदि विषयवस्तु रुचिकर नहीं है तो छात्र सीखने में ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते और डीप्र ही ऊब जाते हैं या थक जाते हैं। इस दृष्टि से पाठ्य-पुस्तक का रुचिकर होना अत्यंत आवश्यक है।

(9.) बच्चे का संज्ञात्मक विकास का सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

Ans:- बच्चे के अनुसार बच्चे की सोचने विचार की शक्ति या मानसिक विकास तीन अवस्थाओं में विकसित होता है।

(i) सक्रियता विधि (ii) दृश्य चित्र विधि (iii) शारीरिक या सांकेतिक विधि

इन तीनों अवस्थाओं का वर्णन इस प्रकार है :-

(i) सक्रियता विधि जन्म से 18 मास तक :- बच्चे के अनुसार बालक के विकास की प्रथम अवस्था में बालकों का मानसिक विकास उसकी सामक क्रियाओं के द्वारा होता है। वह अपनी बातों की बोलकर या प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त नहीं कर सकता। बल्कि अपने भावों के द्वारा प्रदर्शित करता है। जैसे यदि वह भूख का अनुभव करता है तो वह अपना भोजन प्राप्त करने के लिए रोकर या मचलकर दिखाता है तथा लगातार रोता रहता है, जिससे उसके सँकेतों की समझकर माँ उसे दूध आदि देकर उसकी भूख को संतुष्ट करती है। बच्चे को अपने विचारों तथा भावों को अभिव्यक्त करने के लिए सामक क्रियाओं का सहारा लेना पड़ता है तथा चार-चार जैसी-जैसी बड़ा होता है। उसकी बुद्धि का और अधिक विकास होना चला जाता है।

(ii) दृश्य चित्र विधि (18 से 24 महीने) :- यह बालक के विकास की दूसरी अवस्था होती है। इस अवस्था में बालक की उम्र में वृद्धि होने के साथ-साथ उसके मानसिक विकास में भी वृद्धि होती है। इस प्रकार की मानसिक अवस्था में बच्चा अपने मन के भावों तथा अनुभूतियों के अनुसार अपने मन में किसी वस्तु या व्यक्ति का एक चित्र बना लेता है जिसे हम दृश्य चित्र अवस्था कहते हैं। उदाहरण के लिए वह सभी चार पैरों वाले पशुओं को एक जैसा ही मानता है। तथा वह सभी व्यक्तियों (पुरुषों) को पापा ही कहकर बुलाते हैं तथा अपनी दादी जैसी सभी बुजुर्ग महिलाओं को अम्मा कहकर बुलाते हैं। परन्तु बाद में चार-चार इस अवस्था के अंत तक वह अपने माता-पिता तथा घर के अन्य सदस्यों में अन्तर करवा सके जाता है।

(iii) सांकेतिक विधि (24 महीने से 3 वर्ष तक) :- बच्चे के अनुसार यह बालक के विकास की तीसरी अवस्था होती है। इस अवस्था में बालक का मानसिक विकास उस अवस्था में

पहुँच जाता है जहाँ पर वह अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए केवल गौणक क्रियाओं पर निर्भर नहीं रहता बल्कि अपने भावों को व्यक्त करने के लिए शब्दों का माध्यम मिल जाता है। वह भाषा के द्वारा अपने विचारों को बोलकर अपने माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों के सामने प्रकट कर सकता है। इस अवस्था में बालक का मानसिक विकास इतना अधिक हो जाता है कि वह मम्मी को मम्मी तथा पापा को पापा व अन्य अनेक वस्तुओं को उनके नाम से पुकार सकता है तथा उन्हें अलग-अलग वर्गों में बाँटकर उनको अलग-अलग नाम देता है। इस प्रकार ब्रूनर के अनुसार यह बालक के मानसिक विकास की तीव्र तथा तीव्र अवस्था है जिससे बच्चे में भाषा के माध्यम का विकास हो जाता है तथा शब्दों के द्वारा वह अपने भावों व विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

ब्रूनर के संज्ञानात्मक सिद्धांत की विशेषताएँ :-

- (1.) इस सिद्धांत के द्वारा व्यक्ति में सामाजिकता का विकास होता है।
- (2.) इससे व्यक्ति में व्यक्तिगत गुणों का प्रादुर्भाव भी होता है।
- (3.) यह बच्चों के लिए अनुकूल अधिगम परिस्थितियाँ निर्मित करने पर बल देता है।
- (4.) यह सिद्धांत विद्यार्थियों में तार्किक चिन्तन पर बल देता है।
- (5.) यह छात्रों में स्वयं कार्य करने की भावना का निर्माण करता है।

ब्रूनर के सिद्धांत के दोष :-

- (1.) ब्रूनर ने विषय के सूक्ष्म चिन्तन पर बल दिया है। जिससे बच्चों के प्रप्र-व्यय निर्माण में गिड़गता आ जाती है। इससे बच्चों में विषय को लेकर भास या रुद्ध उत्पन्न हो जाता है।
- (2.) विषय के गठन या संरचना प्रत्येक विद्यार्थी के लिए सरल नहीं होता। केवल विशेष प्रतिभाशाली बालक ही इसे समझ सकते हैं।
- (3.) इस सिद्धांत में ब्रूनर ने खोजपूर्ण अधिगम को महत्व दिया है। जबकि यह विषय को खोजपूर्ण विधि के द्वारा नहीं सीखा जा सकता है।

ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का शैक्षिक महत्व :-

- (1.) ब्रूनर ने बच्चों के मानसिक विकास की अनेक अवस्थाओं का वर्णन किया है। शिक्षकों को इसी के अनुसार विधियाँ शिक्षण में प्रयोग करनी चाहिए।
- (2.) ब्रूनर के सिद्धांत में स्वयं सीखने पर बल दिया है। इसकी शैक्षिक उपयोगिता अत्यधिक है। यदि छात्र स्वयं करके सीखेंगे तो अधिगम अधिक स्पष्ट सरल तथा स्थायी होगा।
- (3.) ब्रूनर के सिद्धांत के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण भी बालकों की रुचियों, योग्यताओं व क्षमताओं के अनुसार होना चाहिए।

Q (10.) अधिगम के तीन प्रकार, शास्त्रीय अनुबंधन एवं सक्रिय अनुबंधन का सिद्धान्तों की व्याख्या करें।

Ans: - मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में सीखने की प्रक्रिया का बहुत ही गहन अध्ययन किया है। सीखने के प्रत्येक तत्व का पुस्तक रूप से उन्होंने अध्ययन करने के बाद अपने प्रयोगों द्वारा जो निष्कर्ष निकाले हैं उन सब को संगठित रूप से सीखने के सिद्धांत के रूप में प्रतिपादित किया है। मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम के अनेक प्रकार के सिद्धांत दिए हैं। जिनमें मुख्यतः अधिगम के सिद्धांतों को दो भागों में बांटा जा सकता है: - (i) उद्दीपन अनुक्रिया सिद्धांत

(ii) उद्दीपन उद्दीपन सिद्धांत

(i) उद्दीपन अनुक्रिया सिद्धांत: - उद्दीपन अनुक्रिया में एक उद्दीपन की उपस्थिति में अनेक प्रकार की अनुक्रियाओं की जाती हैं और सभी अनुक्रिया का चयन करके उसे उद्दीपन के साथ संबन्धित किया जाता है। इस प्रकार अधिगम प्रक्रिया पूर्ण होती है।

(ii) उद्दीपन उद्दीपन सिद्धांत: - इस सिद्धांत के अनुसार नियंत्रण स्थितियों में कई उद्दीपन स्थापित किए जाते हैं और सभी उद्दीपनों को अन्तः सम्बन्धित किया जाता है। जो समस्या के हल में प्रयत्न प्रदान करते हैं।

उद्दीपन अनुक्रिया में मुख्यतः अभ्यास पर बल दिया जाता है। अभ्यास करते ही अधिगम में भी कमी आने लगती है। जबकि उद्दीपन - उद्दीपन में अधिगम अभ्यास द्वारा न होकर स्वतः होता है। इन दोनों ही विधियों का शिक्षा के क्षेत्र में अपने-अपने स्तर पर विशेष महत्व है।

* शास्त्रीय अनुबंधन सिद्धांत | अनुकूलित - अनुक्रिया सिद्धांत: - शास्त्रीय अनुबंधन सिद्धांत जिसे अनुकूलित - अनुक्रिया तथा प्रतिस्थापन सिद्धांत भी कहा जाता है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन ईवान ई० पॉवलाव ने 1904 में किया था। वास्तव में अनुबंधन का सिद्धांत शरीर विज्ञान का सिद्धांत है तथा इस अनुबंधन क्रिया में उद्दीपन और प्रतिक्रिया में संबन्ध द्वारा सीखने पर बल दिया है।

ईवान ई० पॉवलाव का सिद्धांत: - अनुकूलित - अनुक्रिया का अर्थ अस्वभाविक उत्तेजना के प्रति स्वभाविक क्रिया करने से है। जैसे - किसी किसी काले रंग की वस्तु को देखकर बालक का डर जाना। चिरे - चिरे यह एक स्वभाविक क्रिया बन जाती है। एक अन्य उदाहरण - मान लीजिए

कोई व्यक्ति 'तोताम' कहने से चिढ़ता है। ऐसा इसलिए होता है कि चिढ़ने वाले व्यक्ति के जीवन में कोई कोई ऐसी घटना घटित हो जाती है कि जिसकी आद आती ही उसे दुःख का अनुभव होता है। उस शब्द के स्पर्श मात्र से वह दुःख पुनः जाग उठता है और व्यक्ति चिढ़ने लगता है। यह सब अचानक ही नहीं होता है बल्कि इस तरह की भावनाएं धीरे-धीरे मन में घर करती हैं।

अतः घटना से दुःख की अनुभूति होती है और अनुभूति से व्यक्ति दुःख का आभास होने के कारण चिढ़ने लगता है। इस उदाहरण से सिद्ध सिद्धांत का प्रतिपादन होता है। उसका मूल आधार व्यक्ति का परिस्थिति को सही व्यवहार है। सक्रिय अनुबंध का सिद्धांत : - वी० एफ० स्कीनर ने 1938 ई० में क्रिया प्रवृत्त। सक्रिय अनुबंधन सिद्धांत का प्रतिपादन किया। स्कीनर का क्रिया प्रवृत्त। सक्रिय अनुबंधन का सिद्धांत उद्दीपन व अनुक्रिया के संबंध पर आधारित है। स्कीनर का सक्रिय अनुबंधन विशेषकर अनुबंधन पर आधारित है, इस सिद्धांत की मूल धारणा यह है कि सक्रिय अनुबंधन में कोई भी घटना या उद्दीपक जो किसी प्रकार अनुक्रिया उत्पन्न करता है। पुनर्बलन कहलाता है।

अनुबंधन : - उद्दीपन व अनुक्रिया के मध्य स्थापित साहचर्य। संबंधन की ही अनुबंधन कहते हैं।

स्कीनर का प्रयोग : - (a) कबूतर पर किया गया प्रयोग : - स्कीनर ने कबूतर पर प्रयोग किया और उसके व्यवहार को बदल दिया। उसने कबूतर की गतिविधि को ध्यान से देखा और उसके दाहिने मुड़ने पर एक दाना ईनाम के रूप में दिया। शुरू में कबूतर को सिर्फ अपना सिर दाहिनी तरफ मोड़ने पर ईनाम दिया गया और फिर और आगे चलने पर ईनाम दिया गया। इस प्रकार कबूतर के व्यवहार को सही दिशा में डाल दिया गया। अंत में वह 8 की आकृति में चलना सीख गया। स्कीनर के अनुसार सक्रिय अनुबंधन से अधिप्राय एक ऐसी अधिगम प्रक्रिया से है जिसके द्वारा सक्रिय व्यवहार को पुनर्बलन द्वारा पर्याप्त बल मिल जाने के कारण वांछित रूप में जल्दी-जल्दी पुनरावृत्ति होती। सीखने वाला अंत में वही व्यवहार सीख लेता है जैसा कि सिखने वाला चास्ता है।

प्रयत्न एवं त्रुटि का सिद्धांत : - थॉर्नडाइक (1874-1949) को प्रयत्न एवं त्रुटि के सिद्धांत का प्रदाता माना जाता है। थॉर्नडाइक के अनुसार जीव प्रयत्न एवं त्रुटि के द्वारा अधिगम करता है। किसी नई समस्या के सामने आने पर उस समस्या के समाधान के लिए जीव एक के बाद एक कई प्रतिक्रियाएं करता। और अंत में सही प्रतिक्रिया का चयन करता है जो समस्या के समाधान में सहाय हो। ऐसे में जीव को यह अधिगम हो जाता है कि सही परिस्थिति पुनः आने पर वही प्रतिक्रिया सहीरानी होगी। इस प्रकार अनेक प्रयत्नों व त्रुटि के बाद व्यक्ति में समस्या विकसित हो जाती है। यह समझ विकसित होना ही सीखना कहलाता है।

थॉर्नडाइक का प्रयोग :- इनका प्रयोग एक भूखी बिल्ली पर था। उसने एक पिंजरे में बंद कर दिया जिसका दरवाजा एक खरके के टबाने से खुलता था। पिंजरे के बाहर एक वर्तन में भोजन में खुनी हुई मछली रख दी गई। बिल्ली भूखी होने का कारण भोजन प्राप्त करने के लिए पिंजरे से बाहर निकलने के लिए जी-जान से कोशिश करने लगी। उसने पिंजरे के अंदर इधर उधर घेड़ लगाई और उड़ल कूद की। इसी दौरान अंजारे में उसका पूंजा खरके पर पड़ने से दरवाजा खुल गया और उसने बाहर भाकर भोजन प्राप्त की। थॉर्नडाइक ने तुरंत ही बिल्ली को पिंजरे में बंद कर दिया। पिंजरे में बंद होती ही बिल्ली पुनः उड़ल कूद करने लगी और जल्द ही खरके को पूंजे से टबाकर बाहर भा गई। थॉर्नडाइक ने पुनः बिल्ली को पिंजरे में बंद किया। ऐसा उन्होंने अनेक बार किया। इस प्रयोग में थॉर्नडाइक ने देखा कि कुछ प्रयासों के बाद बिल्ली पिंजरे के दरवाजे को खोलने में त्रिपुण ही बनी। इसी आधार पर उन्होंने त्रिषुर्क निकास की उद्दीप्त व वांछित अभ्युक्ति के बीच एक संबंध बन गया है। थॉर्नडाइक ने त्रिषुर्क निकास की प्राणी प्रशास सं धूल द्वारा सीखता है।

Q (11.) भासिक शिक्तताओं के कारण बालकों के विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

Ans: - गरीब देशों से अधिप्राय ऐसे देशों से है जिन्होंने विकास की प्रक्रिया शुरू की है, लेकिन अभी भी वे देश विकास के औसत स्तर - प्रत्येक स्तर में पिछड़े हुए हैं। ऐसे देशों में एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देशों को शामिल किया जा सकता है। गरीबी का कार्य :-

जीवन, स्वास्थ्य और कार्य कुशलता के लिए न्यूनतम उपयोग आवश्यकताओं की प्राप्ति में अयोग्यता। अतः गरीबी के कारण व्यक्ति मूल-भूत आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता है। आज के समय में विश्व स्तर में महंगाई बढ़ रही है ऐसे वातावरण में चर परिवार को चलाना मुश्किल हो जाता है और सबसे बड़ी समस्या यह भी आ जाती है कि इस गरीबी के प्रभाव में बच्चों का विकास किस प्रकार होगा। क्योंकि गरीबी के कारण माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था करने में असमर्थ होते हैं।

आर्थिक गिनताओं के कारण बालकों का विकास :-

(1) पूँजीपति वर्ग :- यह वर्ग सबसे दौटा होता है परन्तु इनके पास सम्पत्ति, अधिक और शक्ति सबसे अधिक होती है। ज्यादातर ऐसे वर्ग में व्यवसाय वाले व्यक्ति होते हैं। इस वर्ग के लोग अपने बच्चों को सभी सुख सुविधा प्रदान करते हैं जिसके कारण उन्हें पौष्टिक भोजन समय पर मिल जाता है तो उनका शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा होता है। वह अपने बच्चों को गुणवत्ता वाली शिक्षा देने से भी पीछे नहीं रहते क्योंकि उनके पास धन की कमी नहीं होती है। इस वर्ग के बच्चों में आत्म-सम्मान का भी गुण पाया जाता है।

(a) शारीरिक स्वास्थ्य - इस वर्ग के बच्चों का शारीरिक स्वास्थ्य ज्यादातर अच्छा पाया जाता है।

(b) सामाजिक विकास - इस वर्ग के बच्चे हमेशा अपने ही समान वर्ग के बच्चों के साथ मित्रता करना पसंद करते हैं, वह निम्न वर्ग के किसी बच्चे को अपना मित्र स्वीकार नहीं बनाते हैं।

(c) मानसिक विकास - इस वर्ग के अधिकतर बच्चों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा देखा गया है क्योंकि उन्हें जितने वस्तु की आवश्यकता था इच्छा होती है वही शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है जिससे उनमें किसी भी और की वस्तु को देखकर ईर्ष्या भी नहीं होती। उन्हें घूमने फिरने तथा अच्छे स्कूल में पढ़ने की पूरी स्वतंत्रता होती है। उन्हें किसी बात की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं होती

परन्तु यह भी देखा गया है कि अगर माता-पिता बच्चों की हर इच्छा को पूर्ण करते रहते हैं तो इसका विपरीत प्रभाव भी इन बच्चों पर पड़ता है। भाव्य बरने के साथ-साथ इनकी आँकासियों और इच्छाओं में कृषि होती रहती है और यदि उसे पूरा न किया जाय तो बच्चे तनाव में आ सकते हैं और फिर उनको पूरा करने के लिए चलत कामों में लग जाता है। अतः मातापिता को चाहिए कि वह बच्चों को धन के साथ-साथ अपना समय भी प्रदान करे।

(2) श्रमिक वर्ग :- यह वर्ग सबसे बड़ा होता है परन्तु साधन विहीन होता है। यह पूँजीपति के अन्दर काम करता है। आज की बरती महंगाई के कारण बच्चे के ठीक से पालन-पोषण करना असंभव ही गया है। इस कारण हम बालकों के विकास में निम्न समस्याएँ देख सकते हैं।

(a) शारीरिक विकास न होना :- ऐसे बच्चों को पूर्ण तथा पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता। जिससे उनका शारीरिक विकास प्रभावित होता है, इस वर्ग के अधिक बच्चों में कुपोषण की समस्या देखी जा सकती है। बीमार पढ़ने पर भी चिकित्सा सुविधा न के बराबर मिल पाता है जिससे बच्चे का शारीरिक विकास धीरे-धीरे प्रभावित होता है।

(b) मानसिक विकास :- यह वर्ग ज्यादातर गरीब वस्तुओं तथा झोपड़ियों में रहता है जिसमें हर तरह के लोग रहते हैं जिसका प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। यह भी देखा

गया है कि थोड़ा लालच देकर इन बच्चों को गलत कार्यों में आसानी से फँसाया जा सकता है। इन बच्चों की शिक्षा भी अच्छी नहीं होती है क्योंकि इनके माता-पिता खुद पढ़े लिखे नहीं होते अतः बच्चे शिक्षा के प्रति अरुचि दिखाते हैं। इस वर्ग के बच्चों में काल-अपराध तथा लाल मजदूरी की समस्या अधिक देखी जाती है।

(c) नैतिक तथा सामाजिक विकास - इस वर्ग के बच्चों में नैतिक मूल्यों का आभाव होता है क्योंकि यह जिन वातावरण में रहते हैं वहाँ झूठ बोलना तथा चोरी करना आम बात होती है, इसलिए बच्चे भी झूठ बोलना तथा गलत काम करना सीख जाते हैं। यहाँ तक की उनका सामाजिक विकास भी अच्छा नहीं होता।

(3.) मध्यम वर्ग :- यह वर्ग पूँजीपति तथा श्रमिक वर्ग के बीच में आता है। यह वर्ग हमेशा समाज में अपने स्तर को बनाए रखने की कोशिश करता है। वह अपने को मध्यम वर्ग से नीचे नहीं लाना चाहता है बल्कि पूँजीपति वर्ग बनने की कोशिश में लगा रहता है। इसलिए यह अपने बच्चों का लालन-पोषण भी उन्नी तरह करता है।

यह वर्ग मूल्यों की तरफ अधिक ध्यान देता है। इसलिए वह चाहते हैं कि उनके बच्चों में अच्छे नैतिक मूल्यों का विकास हो जैसे - चोरी न करना, झूठ न बोलना, बड़ों का आदर करना, दूसरों की सहायता करना अपना कार्य स्वयं करना आदि। इस प्रकार उनके माता-पिता की कोशिश रहती है कि उनके बच्चे का शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक विकास के साथ नैतिक व धार्मिक विकास हो।

अतः इस वर्ग से हम कह सकते हैं कि आर्थिक स्थिति समाजीकरण को प्रभावित करती है परन्तु शिक्षा का प्रबंध करते समय हमें ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षा सब को समान रूप से मिले जहाँ प्रत्येक वर्ग का बच्चा पढ़ता है।

Q (12) किशोरों की मुख्य आवश्यकताएँ व समस्याएँ क्या हैं? एक अध्यापक उनकी समस्याओं के हल में कैसे सहायता कर सकता है?

Ans: - किशोरावस्था अंग्रेजी भाषा 'Adolescence' शब्द से बना है जिसका लैटिन भाषा के Adolescere शब्द से उद्भव हुआ है जिसका अर्थ 'परिपक्वता की ओर बढ़ना' है। इससे स्पष्ट है कि किशोरावस्था वह अवस्था है जिसमें बाल्यावस्था के बाद व्यक्ति पदार्पण करता है। सामान्यतया यह अवस्था तेरह वर्ष से उन्नीस वर्ष तक मानी जाती है। इसलिए इस अवस्था को Teen Age भी कहा जाता है। स्टेनली हाल का कहना है कि - "किशोरावस्था लड़े इवाक, इफ्तान और सैचर्ष की अवस्था है।"

किशोरों की समस्याएँ / आवश्यकताएँ :-

किशोरों की समस्याएँ इस प्रकार हैं जो बाद में उनकी आवश्यकताओं का रूप धारण कर लेती हैं।

(a) शारीरिक परिवर्तन संबंधी उलझनें :- किशोरावस्था में प्रायः ऐसा अनुभव किया गया है कि इस अवस्था में किशोरों में बाहरी तथा भीतरी रूप से अनेक प्रकार के परिवर्तन होने लगते हैं। जिन्हें स्वयं किशोर भी नहीं समझ पाते, जिसके कारण वे चिन्तित तथा तनाव ग्रस्त रहने लगते हैं। क्योंकि वे अपने भीतर चल रहे बदलाव के संबंध में किसी की भी बातचीत करने से डरते हैं। इसी कारण वे अधिकतर परेशान रहते हैं।

(b) आत्म-सम्मान, आत्म स्वीकृति तथा सुरक्षा की समस्या - किशोर चरम प्रमाणा पर जगह अपने लिए सम्मान की इच्छा रखता है। प्रत्येक किशोर चाहता है कि उसके द्वारा किये गये कार्यों की कृपे सराहा करे। उसके माता-पिता तथा अध्यापक एवं प्राची उसे स्नेह दें। जो किशोर गरीब होते हैं वे प्रायः अपने आप को अनुचित महसूस करते हैं जिसके कारण वे हीन भावना के शिकार हो जाते हैं।

(c) कल्पना की बहुलता :- किशोरावस्था में कल्पना की प्रधानता रहती है वह दिवास्वप्न की दुनिया में विचरण करता है। दिवास्वप्न बालक को प्रेरित करती है। इसके आधार पर किशोर कविता, कहानी, लेखन आदि लिखने के लिए प्रेरित होता है। इस प्रकार सित कार्यों को करने में वह स्वयं को आसक्त पता है उसकी वह दिवास्वप्न के माध्यम से पूरा करके कुछ पन्तोष अनुभव करता है। दिवास्वप्न की बहुलता किशोरों के लिए हानिकारक भी होती है।

(d) वीर-पूजा :- किशोरों में वीर-पूजा की भावना विकसित हो जाती है। वे आदर्श-पुरुष का अनुकरण प्रारंभ कर देते हैं। स्त्रियाँ का अभिनेता बन

अभिनेत्री, ऐतिहासिक वीर-पुरुष या चार्मिक नेता, राजनैतिक नेता, या विद्वान उनके आदर्श पुरुष हो सकते हैं। किंगोर अपने आदर्श व्यक्ति का गुणगान करते नहीं करते हैं।

(८) विद्रोह की भावना :- किंगोरावस्था में किंगोरो में आत्म-सम्मान की भावना का विकास हो जाता है। वे अपने समीक्षित स्वयं लेना चाहते हैं। वे अपने को अधिक समझदार तथा दूसरों को पूर्व समझने लगते हैं। बड़ों के किसी भी प्रकार के नियंत्रण को स्वीकार नहीं करते, वे विद्रोही होकर माता-पिता तथा अध्यापकों की आज्ञा का विरोध करने लगते हैं।

(९) व्यवसायिक चुनाव संबंधी समस्या :- प्रायः किंगोरावस्था के दौरान ही प्रत्येक किंगोर के सामने व्यावसायिक चुनाव की समस्या आ जाती है। इसे अपने पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों का चुनाव करना होता है जो आगे चलकर उनके भविष्य के व्यवसाय में सहायता कर सकें। उचित व्यावसायिक पाठ्यक्रमों या व्यवसाय चुनाव में उन्हें काफी परेशानी का अनुभव करना पड़ता है।

किंगोरावस्था में अध्यापक की भूमिका :- एक अध्यापक किंगोरावस्था की समस्याओं को हल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। अध्यापक का कर्तव्य है कि इस आयु के बालकों के लिए एक इष्टि (आर) की दूसरी बुध्दा की रखे। आर की इसलिये कि उनके साथ आत्मीयता, परिच्छता बनी रहे, पराये-पन जैसा विरोधाभास उत्पन्न न हो पाये। बुध्दा की इष्टि इसलिये कि उनके उभरते हुए शेष, दुर्गुणों पर नियंत्रण स्थापित किया जा सके।

अध्यापक का कर्तव्य है कि वह किंगोर की व्यवसाय के चयन के बारे में उचित प्रदर्शन प्रदान करे। उनके लिए शारीरिक शिक्षा की व्यवस्था उपलब्ध करवाये। किंगोरो में प्राथमिक इन्द्र की स्थिति न रहे उनके लिए उपदेष्टा की जगह उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किंगोरावस्था उम्र का वह पड़ाव है, जहाँ न तो बचपना रह जाता है और न ही वैचारिक परिपक्वता आती है। इस अवस्था में उद्देश्यपक व रोजगारपक शिक्षा देनी चाहिए। जिलों सुखद भविष्य की गारंटी हो। एक अध्यापक उनकी समस्याओं को हल करने में सहायता कर सकता है।

Q (13.) प्रतिस्पर्धा की परिभाषा क्या है? सामाजिक जीवन में प्रतिस्पर्धा के महत्व के विषय में बताइए।

Ans: - सामाजिक संघर्ष की एक वास्तविकता प्रतिस्पर्धा या प्रतियोगिता भी है। प्रतिस्पर्धा में जो या जो से अधिक व्यक्ति परस्पर ईर्ष्या, ईर्ष्या और अधिक परिश्रम व प्रयासों के द्वारा अपने व्यक्तिगत उद्देश्यों या लक्ष्यों को हासिल करने का प्रयास करता है। इसे ही प्रतिस्पर्धा कहा जाता है।

प्रतिस्पर्धा ऐसी प्रक्रिया होती है जिसका आधार आत्म-अभिव्यक्ति होता है जिसके द्वारा बालक का सामाजिक विकास होता है। प्रतिस्पर्धा में कई तरह की भावनाएं शामिल होती हैं जिसमें वह अन्य बच्चों से हर क्षेत्र में आगे निकलने की होड़ में लगा रहता है तथा इसी की तुलनात्मक लोच को प्रतिस्पर्धा का नाम दिया जाता है। प्रॉ० चैन के अनुसार - "प्रतिस्पर्धा सीमित वस्तुओं के उपयोग और अधिकार के लिए होने वाला संघर्ष है।"

प्रतिस्पर्धा की प्रकृति :-

- 1) प्रतिस्पर्धा एक महत्वपूर्ण अग्रदयोगी सामाजिक प्रक्रिया है।
- 2) प्रतिस्पर्धा में जो या जो से अधिक व्यक्ति या समूह होते हैं, प्रत्येक पक्ष व्यक्तिगत हितों को पूरा करने की चेष्टा करता है।
- 3) प्रतिस्पर्धा में निरंतरता पाई जाती है क्योंकि अधिकतर व्यक्ति जीवन के प्रत्येक स्तर पर किसी न किसी तरह की प्रतिस्पर्धा करते रहते हैं।
- 4) प्रतिस्पर्धा में अचेतना का गुण पाया जाता है। इसमें एक पक्ष को दूसरे पक्ष के कार्यों का ज्ञान नहीं होता। एक पक्ष केवल अपने ही कार्यों में लीन रहता है।
- 5) प्रतिस्पर्धा में सर्वव्यापकता का गुण है, क्योंकि प्रत्येक समूह में और प्रत्येक समूह प्रतिस्पर्धा की भावना और प्रक्रिया होगी रही है।

प्रतिस्पर्धा का प्रभाव :-

- 1) प्रतिस्पर्धा में अनेक भावनाएं शामिल होती हैं छोटे बच्चे प्रतिस्पर्धा में अपने आई बहनों की तुलना में अच्छा कार्य करने की कोशिश करते हैं जैसे - कपड़े पहनने में, खेलने में, दौड़ने में।
- 2) प्रतिस्पर्धा से बालक का सामाजिक विकास होता है।
- 3) प्रतिस्पर्धा से बालक आत्म चिंतन तथा अपना प्रदर्शन करना शुरू कर देता है।
- 4) प्रतिस्पर्धा बालक की दिमी योग्यता को भी बाहर निकालने में सहायता करती है।
- 5) प्रतिस्पर्धा में ईर्ष्या की भावना भी होती है, जिससे आक्रामक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

प्रतिस्पर्धा और शिक्षा : - आधुनिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा दिन-दूनी रात-दुनी लड़ने लगी है। यह कह सकते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा का बोल-बाला है; इस प्रकार की स्पर्धा में छात्रवृत्तियों प्रदान करके छात्र-छात्राओं में प्रतिस्पर्धा की भावना को जाग्रत किया जाता है।

इसके विपरीत कम शैल प्राप्त करने वाले छात्र-छात्राओं में हीनता की भावना पैदा हो जाती है और इनमें से संवेदनशील विद्यार्थी हतोत्साहित होकर आत्महत्या का विकार हो जाते हैं। इसलिए आज प्रतिस्पर्धा के आलोचक परीक्षा पद्धति पर अनेक प्रकार के प्रश्न उठाते लगे हैं उनके मतानुसार प्रतिस्पर्धा प्रेरणा न उत्पन्न करके नकारात्मक शिक्षा में अग्रसर हो रही है।

प्रतिस्पर्धा का सामाजिक जीवन में महत्व : -

प्रतिस्पर्धा प्रत्येक काल में और प्रत्येक समूह में विद्यमान रही है। यह समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता होती है। जो स्वाधीनी होती है। प्रतिस्पर्धा का महत्व व्यक्ति द्वारा अर्जित पदों के क्षेत्र में तो बहुत ही अधिक दिखाई पड़ता है। अर्जित पदों की संख्या और प्रकृति अलग-अलग समाजों में अलग-अलग होती है। इसी कारण से विभिन्न समाजों में प्रतिस्पर्धा का स्वरूप भी अलग होता है। प्रमुख का जीवन प्रतिस्पर्धा के बीच ही घुमता रहता है क्योंकि व्यक्ति के रूप में हम दूसरे व्यक्तियों से मौकरी, व्यापार या किसी अन्य क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा करते हैं। समूह के सदस्य के रूप में हम उद्योग, व्यापार में अन्य लोगों से प्रतिस्पर्धा करते हैं। जीवन के कई अन्य क्षेत्र जैसे धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक या पारिवारिक क्षेत्रों में भी एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं। हमारा ज़रूरी जीवन प्रतिस्पर्धाओं की जंजीरों से बंधा होता है।

प्रतियोगिता समाज की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसके कारण व्यक्ति कार्य कुशल और मेहनती बनता है। उसकी इच्छा होती है कि वह अधिक से अधिक मेहनत करके दूसरों से आगे निकल जाए और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करें।

प्रतिस्पर्धा का घृणित रूप अनियंत्रित प्रतिस्पर्धा है जिससे समाज में ~~असंतुलन~~ अव्यवस्था फैल जाती है और सामाजिक नियम का अंटेगा पैदा हो जाता है। यदि प्रतिस्पर्धा अपने नियमों और तय सीमाओं में रहकर कार्य करती है तो वह समाज को ऊपर उठाती है और विकास करती है।

Q (14.) वैशानुकर्म के वातावरण का व्यक्तिगत भिन्नताओं पर क्या प्रभाव है?

Ans:- व्यक्तिगत भिन्नता में वैशानुकर्म का हाथ रहता है या वातावरण का इस संबंध में मतभेद है। वैशानुकर्मवादियों के अनुसार यह वैशानुकर्म का निर्धारित होती है। इसीलिए भिन्न-भिन्न परिवार के व्यक्तियों की शारीरिक और मानसिक योग्यताओं में अंतर होता है। दूसरी ओर वातावरणवादियों का कहना है कि इसमें वातावरण का हाथ होता है। अतः वातावरण की भिन्नता के कारण लोगों की योग्यताओं में भिन्नता देखने को मिलती है।

(a) वैशानुकर्म :- मानक का विकास अनेक कारकों के द्वारा होता है।

इस कारकों में दो प्रमुख हैं :- जैविक तथा सामाजिक।

जैविक - जैविक विकास का दायित्व माता-पिता पर होता है।

सामाजिक - सामाजिक विकास का वातावरण पर।

माता-पिता शिशु को जन्म देने से उसके शारीरिक विकास का बाल से आरंभ ही जाता है और जन्म के पश्चात् मृत्यु तक चलता रहता है।

सामाजिक विकास जन्म के बाद मिले वातावरण द्वारा होता है। कोई भी प्राणी अपने माता-पिता और पूर्वजों के गुणों को विरासत में प्राप्त करता है और इसी कारण वह अपने माता-पिता, पूर्वज तथा अपनी जाति के सदस्यों से अधिक सामन्जस्य रखता है।

लोगों का यह विश्वास है कि जैसे माता-पिता होते हैं वैसे ही उनकी संतान होती है। इसका मतलब यह है कि बालक रंग, रूप, आकृति आदि में माता-पिता से मिलता जुलता है। इसके शब्दों में, अपने अपने माता-पिता के शारीरिक और मानसिक गुण प्राप्त होते हैं।

उदाहरण :- यदि माता-पिता विद्वान हैं तो बालक भी विद्वान होता है पर यह भी देखा जाता है कि विद्वान माता-पिता का बालक दुर्बल और दुर्बल माता-पिता का बालक विद्वान होता है।

इसका कारण यह है कि बालक को न केवल अपने माता-पिता से अतः उसके पहले के पूर्वजों से भी अनेक शारीरिक और मानसिक गुण प्राप्त होते हैं। इसी को हम वैशानुकर्म, वंश-परम्परा, आनुवंशिकता आदि नामों से पुकारते हैं।

B.N. Srin के अनुसार :- "वैशानुकर्म व्यक्ति की जन्मजात विशेषताओं का पूर्ण योग है।"

H.P. Peterson के अनुसार :- "व्यक्ति को अपने माता-पिता से पूर्वजों की ही विशेषताएँ प्राप्त हैं, उसे वैशानुकर्म कहते हैं।"

बच्चे पर वंशाणुक्रम का प्रभाव :-

- (1) मूल शक्तियों पर प्रभाव (2) शारीरिक लक्षणों पर प्रभाव
- (3) प्रजाति की श्रेष्ठता पर प्रभाव (4) सामाजिक स्थिति पर प्रभाव
- (5) चरित्र पर प्रभाव (6) बुद्धि पर प्रभाव।

(B) वातावरण :- वातावरण अथवा पर्यावरण से तात्पर्य उस सभी वास्तव तत्व अथवा शक्तियों से है जो माँ द्वारा गर्भाधान के तुरन्त बाद से ही व्यक्ति विशेष की बुद्धि और विकास को प्रभावित करते रहते हैं। जन्म से पहले माँ का गर्भाशय इन शक्तियों का कार्य क्षेत्र होता है। माँ जो कुछ भी खाती है, करती, सोचती और अनुभव करती है, उस सभी का प्रभाव गर्भ में स्थित बालक पर पड़ता है। जन्म के पश्चात् ती-चारों ओर से वातावरण संबंधी शक्तियाँ उसको प्रभावित कर देती हैं।

वातावरण के लिए 'पर्यावरण' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है। 'परि' + 'आवरण'। परि का अर्थ होता है - (चारों ओर) एवं (आवरण) का अर्थ है 'ढकने वाला'। इस प्रकार पर्यावरण या वातावरण वह वस्तु है जो चारों ओर से बच्चे या बच्चे के डूब है। अतः हम कह सकते हैं कि व्यक्ति के चारों ओर जो कुछ है वह उसका वातावरण है।

Woodworth के अनुसार - " वातावरण में वे सब वास्तव तत्व आ जाते हैं जिन्होंने व्यक्ति को जीवन आरंभ करने के समय से प्रभावित किया है।"

Ross के अनुसार - " वातावरण वह बाहरी शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है।"

बच्चे पर वातावरण का प्रभाव :-

- (1) शारीरिक अन्तर् पर प्रभाव (2) सामाजिक विकास पर प्रभाव
- (3) बुद्धि पर प्रभाव (4) व्यक्तित्व पर प्रभाव।

इस प्रकार वंशाणुक्रम और वातावरण दोनों में से किसी को भी पूरी तरह से नियंत्रित नहीं किया जा सकता। इसका मूल कारण यही है कि बालक की बुद्धि और विकास पर इन दोनों के प्रभाव को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इसलिए यह कहना कठिन ही जाता है कि व्यक्ति की किसी विशेषता या गुण के लिए वंशाणुक्रम उत्तरदायी है अथवा वातावरण।

Q (15)

इर्बंगता क्या होती है ? तथा यह किन कारणों से उत्पन्न होती है ?

Ans:-

बच्चों में भाव्य बर्तने के साथ-साथ कई बुजुर्गों का विकसित होता है इनमें कुछ प्रत्युण होते हैं तो कुछ दुर्गुणों का प्रपन भी स्वाभाविक होता है जैसे- चिढ़ाना, चोस जमाना, झूठ बोलना, चोरी करना। इस प्रकार का व्यवहार प्रंतुलित प्रमायोजन वाले व्यक्तियों में कम तथा अप्रंतुलित प्रमायोजन वाले बालकों में अधिक पाया जाता है। मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दृष्टि से देखा जाय तो बच्चा अन्य बालकों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है। जो बालक दूसरे बालकों की बात नहीं मन्ता था। उसके मित्रों को नहीं स्वीकार करता, तब वह बड़े बच्चों के क्रोध और घृणा का पात्र बन जाता है।

इर्बंगता का अर्थ :- इर्बंगता वह है जिसमें बड़ा या शक्तिशाली बच्चा छोटे या कमजोर बच्चों पर चोस जमाना है अर्थात् प्रभुत्व जमाने की कोशिश करता है। यह ऐसी प्रक्रिया है जिसमें तंग करने का व्यवहार शामिल होता है इसमें आक्रमकता की भावना भी होती है। ऐसे बालक ऐसे बच्चों की तालाश में होते हैं जो उनसे बड़ जाय और यदि वह बच्चा इर्बंग बच्चों से डर जाता है तो वह उनपर और हावी हो जाता है। जैसे- कमी बाल रबीचना, कोई गेम खेल रहा हो तो उस गेम को बिगाड़ देना, तंग मार देना आदि। परन्तु यह देखा गया है कि इस तरह का व्यवहार लड़कों में अधिक पाया जाता है और जो बालक अप्रंतुलित प्रमायोजन के होते हैं उनमें भी इर्बंगता पाई जाती है। यह इर्बंगता प्रत्येक अवस्था में अलग-अलग पाई जाती है।

(a) बाल्यावस्था :- बाल्यावस्था ऐसी अवस्था होती है जिसमें बच्चे खेल की प्रक्रिया में अधिक भाग लेते हैं। उनका अपना ही खेल होता है और वे स्वयं खेल का नियम बनाते हैं। इसलिये जो बच्चे बड़े होते हैं वह खेल में छोटे बच्चों पर अपनी चोस जमाने हैं। खेल के दौरान उनके बीच लड़ाई-अगड़ा तथा मार-पीट हो जाती है। यही नहीं वह घर पर भी अपनी बात मनाने के लिए प्रारम्भ पितर पर जोर डालता है तथा जिद्द करता है।

(b) उत्तर-बाल्यावस्था :- यह अवस्था है जिसमें बालक अन्य बालकों के साथ प्रतिस्पर्धा तथा प्रतिद्वन्द्विता करता है और भागे निकलने की कोशिश करता है। जैसे- यदि वह अपने दोस्तों के साथ कोई खेल खेल रहा है और वह हारने लगता है तो वह उस हार को स्वीकार नहीं करता बल्कि

के पास कोई वस्तु देरता है तो वह उसे लेने की जिद शुरू कर देता है और बार तो यहाँ तक भी देरता गया है कि बच्चे को अगर कोई चीज नहीं मिल पाती तो वह सामने वाले की भी चीज तोड़ देता है।

(c) किशोरावस्था :- इस अवस्था में बालकों के अपने-अपने समूह बन जाते हैं जिनमें ज्यादातर बच्चे के समान रसिकताले ग्रुप होते हैं हर ग्रुप का अपना प्रभुत्व होता है। उदाहरण के लिए यदि किसी ग्रुप में सभी शरारती बच्चे हैं तो यह अन्य ग्रुप पर अपना प्रभुत्व जमाने की कोशिश में रहते हैं और जिस ग्रुप का उनसे अच्छा संबंध नहीं होता वह उनसे बढना देने की कोशिश में रहते हैं परन्तु आशु बढने के साथ अगरे भी कम होने लगते हैं तथा बच्चों का सामाजिक विकास भी रुक जाता है।

दुर्बल व्यवहार के कारण :-

(1.) जब माता पिता अपने बच्चों को प्रत्येक दोगी बड़ी बातों के लिए रोक-टोक करते हैं या मारते-पीयते हैं तो उन बच्चों के व्यवहार में भी वह सब आ जाता है।

(2.) माता-पिता के आपस के संबंध भी बच्चे के व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

(3.) जब बच्चा अपने परिवार में अकेला बच्चा हो अर्थात् उसका कोई भाई-बहन न हो तो वह बाहरी समाज में भी सही से समायोजन नहीं कर पाता है।

(4.) यदि बच्चा अपने लक्ष्यों तथा कार्यों को पूरा नहीं कर पा रहा हो।

(5.) जब माता-पिता बच्चे की हर बात को पूरा कर देते हैं तो भी बच्चे में यह भावना आ जाती है कि उसके पिता भी उसकी प्रत्येक बात को मानें।